सोच

पवन कुमार पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी
श्री वेंकटेश्वर महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

आज गए थे दोस्त से मिलने
कुछ सुनाने और कुछ सुनने,
बचपन की यादों को ताजा करने
एक बार फिर से बच्चा बनने...

सोचा था बचपन के खेल फिर से खेलेंगे
गुरुजनों और किताबों में फिर से उलझेंगे,
जाति-धर्म, ऊंच-नीच, फिर नहीं मानेंगे
साथ देंगे और साथ लेंगे...

चलो, दिल की गलियों में खेलेंगे दिल भर
भावों का संगम हुआ दोस्त पाकर,
मगर, बदला था सब कुछ और बदल गया है जमाना
इतना भी बदल जाएगा, दिल ने न माना...
लगा दोस्त अपनी उपलब्धियां गिनाने
बातों ही बातों में मुझको गिराने,
अपनी कुटिलता में मुझको मिलाने
निरर्थक बातों को लगा समझाने...

अपनी अमीरी पर लंबा-चौड़ा भाषण दे डाला
सच की कर दी थी हत्या और झूठ की पहनी माला,
चेहरे पर न कोई शरम थी और न ही भगवान का कोई भय
कितना गिर गया था मेरा दोस्त और विस्मित था मैं...

सच, ये महोदय कितना बदल गए हैं
झूठ और कपट अब इनके गहरे मित्र हैं,
इनकी सोच और नीयत कितनी बदल गई
सुनते ही सुनते बहुत देर हो गई...

चलने का किया था उपक्रम और दोस्त से विदा ली,
सोच के चला था तो कुछ और मगर यहां बात कुछ और ही हो ली
भरे मन से वापिस घर लौट आया था
पत्नी पूछती ही रह गई थी मगर मैं उसे कुछ भी बता ही नहीं पाया था...

'इंसानियत' और 'सच' तो केवल किताबों तक ही सीमित रह गए हैं
गिरती सोच लेकर चलते ये 'विषधर सजीव' अब केवल ढांचा मात्र हो गए हैं,
काश! 'पवन' बचपन का बचपना मिल पाता
सब तरफ होती अपूर्व शांति और मैं भी जन्नत पाता...